सरसंघचालक ने कहा कि राम मन्दिर के बाद संघ कोई आन्दोलन नहीं करेगा। इनके अनुसार सनातनी शास्त्रों में बदलाव होना चाहिए, श्रीराम इमामहिन्द हैं। ये लोग मदरसों और मुस्लिम -ए- स्त्रियों को अनुदान भी दिलाते हैं और अब कह रहे हैं कि ज्ञानवापी जैसे मुद्दों पर हरमस्ज़िद में शिवलिंग नहीं देखना चाहिए। क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए, ये शास्त्रनिष्ठ हिन्दू समाज अपना देख लेना। जब आपने कह दिया है कि संघ धार्मिक संगठन नहीं है, तो उचित यही है कि आप बिल्कुल । स्पष्ट है कि इन्होंने सत्य ही कहा था।"चुप रहें" @DrMohanBhagwat एवं धर्मद्रोही म्लेच्छों का DNA एक ही तो है।

ज्ञानवापी विमर्श

निर्गुण ब्रह्म जब सगुणावतार धारण करते हैं तो उद्भव, स्थिति, संहार, अनुग्रह एवं निग्रहसम्बन्धी क्रियाओं को सम्पादित करने हेतु क्रमशः हिरण्यगर्भ, विष्णु, शिव, गणपति एवं दुर्गा की स्वारूपसंज्ञाओं से लक्षित किये जाते हैं। "एकैव शक्तिः परमेश्वरस्य भिन्ना चतुर्धा व्यवहार काले", ऐसी भृङ्गीरिटी संहिता की उक्ति से भी यह बात ज्ञात होती है। इसमें संहारपरक क्रिया को सम्पादित करते हुए परब्रह्म की शङ्कर अथवा शिवसंज्ञक वाच्यता होती है। भगवान् शिव इन्हीं पञ्चब्रह्म में आते हैं, जिनकी शाश्वत अधिपुरी काशी है।

भगवान् शिव ने अपने पञ्चमुखी स्वरूप को प्रकट किया जिनके नाम हैं - सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष एवं ईशान। कालान्तर में यह पांचों मुख स्वतन्त्र रूप से भी प्रतिष्ठित हुए। अग्निपुराण के ३०४थे अध्याय, श्लोक - २५-२६ में कहते हैं -

पूर्वे तत्पुरुषः श्वेतो अघोरोऽष्टभुजोऽसितः।
चतुर्बाहुमुखः पीतः सद्योजातश्च पश्चिमे॥
वामदेवः स्त्रीविलासी चतुर्वक्त्रभुजोऽरुणः।
सौम्ये पञ्चास्य ईशाने ईशानः सर्वदः सितः॥

ये पञ्चवक्त्र रुद्र कालान्तर में पांच सिंहासनों पर विराजमान हुए। भगवान् शिव के अंश से पांच शैवाचार्यों का प्राकट्य हुआ था। श्रीमज्जगद्गुरु रेणुकाचार्य, दारुकाचार्य, एकोरोमाचार्य, पण्डिताचार्य एवं विश्वाचार्य, इन पञ्च-जगद्गुरुओं को भगवान् शिव ने अपने पांच सिंहासनों के माध्यम से शैवमत की रक्षा करने का कार्यभार प्रदान किया। इनमें प्रथम वीरसिंहासन की स्थापना कर्णाटक के रम्भापुरी में की गयी है। द्वितीय सद्धर्मसिंहासन की स्थापना पहले मध्य प्रदेश के उज्जैन में की गयी थी जिसे कालान्तर में कर्णाटक में स्थानान्तरित किया गया। तृतीय वैराग्यसिंहासन की स्थापना आन्ध्र प्रदेश के श्रीशैलम् में की गयी थी। चौथे सूर्यसिंहासन का स्थान उत्तराखण्ड के केदारनाथ में है तथा पांचवें ज्ञानसिंहासन की स्थापना उत्तर प्रदेश की काशी नगरी में हुई है।

काशी ज्ञानसिंहासन की नगरी है। विश्वनाथ भगवान् ने स्कन्दपुराण के काशीखण्ड में स्वयं अपना जो प्रासाद मानचित्र वर्णित किया है, उसमें उन्होंने पञ्चमण्डपों का वर्णन किया है। ये मण्डप हैं - मुक्तिमण्डप, ऐश्वर्यमण्डप, निर्वाणमण्डप, शृंगारमण्डप एवं ज्ञानमण्डप। स्वनामधन्या राजमाता अहल्याबाई होलकर ने जब श्रीविश्वनाथ भगवान् के मन्दिर का पुनर्निर्माण कराया तो यह लिखवाया - "विश्वेश्वरस्य रमणीयतरं सुमन्दिरं श्रीपञ्चमण्डपयुतं सदृशञ्च वेश्म॥"

कृत्यकल्पतरुकार पौराणिक सन्दर्भ से वहां एक कुएं को वर्णित करते हैं -
तदन्धोः पूर्वतो लिङ्गं पुण्यं विश्वेश्वराह्वयम्।
विश्वेश्वरस्य पूर्वेण वृद्धकालेश्वरो हरः॥
तस्य पूर्वेण कूपस्तु तिष्ठते सुमहान् प्रिये।
तस्मिन्कूपे जलं स्पृश्य पूतो भवति मानवः॥

कूप की स्थिति स्पष्ट करने के बाद यह भी बताते हैं कि उस कूप की रक्षा करने हेतु देवाधिदेव शिवजी की आज्ञा से पश्चिम दिशा में भगवान् दण्डपाणि नियुक्त हैं। साथ ही पूर्वदिशा में तारकेश्वर, उत्तर में नन्दीश्वर एवं दक्षिण में महाकाल विद्यमान् हैं।

दण्डपाणिस्तु तत्रस्थो रक्षते तज्जलं सदा ।
पश्चिमं तीरमासाद्य देवदेवस्य शासनात्॥
पूर्वेण तारको देवो जलं रक्षति सर्वदा।
नन्दीशश्चोत्तरेणैव महाकालस्तु दक्षिणे॥

ज्ञानमण्डप की स्थिति प्रधान शिवस्थान से पूर्व दिशा की ओर है। वहां से ज्ञानसिंहासनाधीश भगवान् शिव ज्ञान का प्रसारण करते हैं -

मत्प्रासादैन्द्रदिग्भागे ज्ञानमण्डपमस्ति यत्।
ज्ञानं दिशामि सततं तत्र मां ध्यायतां सताम्॥
(स्कन्दपुराण, काशीखण्ड, अध्याय - ७९, श्लोक - ७५)

आधुनिक सम्प्रदायों में स्वामीनारायण सम्प्रदाय के अर्वाचीन ग्रन्थ, सपादलक्षोत्तरश्लोकी लक्ष्मीनारायण संहिता में ज्ञानवापी का उल्लेख मिलता है। यद्यपि यह कृति सार्वभौमिक सनातन शास्त्रजगत् में मान्य नहीं है किन्तु फिर भी मैं पहले अर्वाचीन प्रमाण ही रखूंगा क्योंकि इस प्रसङ्ग की साम्यता अन्य मान्य प्राचीन शास्त्रों में मिलती है। लक्ष्मीनारायणसंहिताकार श्रीकृष्णवल्लभाचार्य जी, जो आधुनिक विश्व के अतिशिक्षित विद्वानों में परिगणित होते हैं, लिखते हैं -

कुरुक्षेत्रं हाटकेशक्षेत्रं प्रभासक्षेत्रकम्।
यथोक्तविधिना कृत्वा जनः पापात् प्रमुच्यते॥
प्रथमं पुष्करारण्यं नैमिषारण्यमित्यपि।
धर्मारण्यं तृतीयञ्च सर्वेष्टफलदायकम्॥
वाराणसीपुरी त्वेका द्वितीया द्वारकापुरी।
तृतीयाऽवन्तिकापूश्च यथेष्टफलदायिनी॥
वृन्दावनं द्वैतवनं तथा च खाण्डवं वनम्।
स्नानाद्वासात्स्वर्गमोक्षप्रदं पापविनाशकम्॥
कालग्रामः शालग्रामो नन्दिग्रामस्तृतीयकः।
इन्द्रियग्रामतृष्णानां ध्वंसको मोक्षदस्तथा॥
अग्नितीर्थं शुक्लतीर्थं पितृतीर्थं तृतीयकम्।
तत्र स्नानाद्भुक्तिमुक्ती लभते मानवो ध्रुवम्॥
श्रीपर्वतश्चाऽर्बुदाद्री रैवताचल इत्यपि।
यात्राकर्ता स्वर्गभोक्ता पश्चान्मुक्तिप्रगो भवेत्॥
गङ्गानदी नर्मदाख्यानदी सरस्वतीनदी।
स्नानाद्भुक्तिस्तथा मुक्तिस्तथेष्टं सर्वदा ददेत्॥
ज्ञानवापी च कुङ्कुमवापी रोहणवापिका।
जलपानाद्भवेन्मुक्तिर्वापीत्रयं हि पावनम्॥
नारायणसर इन्द्रसरो मानसकं सरः।
सरस्त्रयं भुक्तिमुक्तिप्रदं स्नानाद्भवत्यपि॥
(लक्ष्मीनारायणसंहिता, कृतयुगसन्तानखण्ड, अध्याय - ५१४, श्लोक - ०३-१२)

श्लोकों का भाव यह है कि तीन क्षेत्र (कुरुक्षेत्र, हाटकेशक्षेत्र एवं प्रभासक्षेत्र), तीन अरण्य (पुष्करारण्य, नैमिषारण्य एवं धर्मारण्य), तीन पुरी (वाराणसीपुरी, द्वारकापुरी एवं अवन्तिकापुरी), तीन वन (वृन्दावन, द्वैतवन एवं खाण्डववन), तीन ग्राम (कालग्राम/कलापग्राम, शालग्राम एवं नन्दिग्राम), तीन तीर्थ (अग्नितीर्थ, शुक्लतीर्थ एवं पितृतीर्थ), तीन पर्वत (श्रीशैल, अर्बुदाचल/माउण्ट आबू, रैवत पर्वत), तीन नदी (गङ्गा, नर्मदा एवं सरस्वती), तीन वापी (ज्ञानवापी, कुङ्कुमवापी एवं रोहणवापी), तथा तीन सरोवर (नारायण सरोवर, इन्द्रसरोवर एवं मानसरोवर) का सेवन करने वाला व्यक्ति समस्त कामनाओं का उपभोग

करके मोक्ष को प्राप्त होता है।

अब सर्वमान्य शास्त्रीय प्रमाणों पर आते हैं।

असीवरुणयोर्मध्ये पञ्चक्रोश्यां महाफलम्।
अमरा मृत्युमिच्छन्ति का कथा इतरे जनाः॥
मणिकर्ण्यां ज्ञानवाप्यां विष्णुपादोदके तथा।
ह्रदे पञ्चनदे स्नात्वा न मातुः स्तनपो भवेत्॥
प्रसङ्गेनापि विश्वेशं दृष्ट्वा काश्यां षडानन।
मुक्तिः प्रजायते पुंसां जन्ममृत्युविवर्जिता॥
(स्कन्दपुराण, वैष्णवखण्ड, बदरिकाश्रममाहात्म्य, अध्याय - ०१, श्लोक - २९-३१)

अर्थात् - हे कार्तिकेय ! असी और वरुणा के मध्यभाग में पांच कोश के परिमाण वाले क्षेत्र का महान् फल है। यहाँ देवता भी मृत्यु पाने की कामना करते हैं, अन्य सामान्यजनों की क्या बात करें। मणिकर्णिका, ज्ञानवापी, विष्णुपादोदक (गङ्गा) और पञ्चनद सरोवर में स्नान करने के बाद व्यक्ति पुनः माता का स्तनपान नहीं करता (उसका पुनर्जन्म नहीं होता है)। संयोगवश भी काशी में लोग भगवान् विश्वेश्वर का दर्शन कर लें तो जन्म और मृत्यु से छुटकारा देने वाली मुक्ति उनमें उत्पन्न हो जाती है (उनका मोक्ष हो जाता है)।

जैसा कि भगवान् शिव स्वयं बताते हैं -

जलक्रीडां सदा कुर्यां ज्ञानवाप्यां सहोमया।
यदम्बुपानमात्रेण ज्ञानं जायेत निर्मलम्॥
तज्जलक्रीडनस्थानं मम प्रीतिकरं महत्।
अमुष्मिन्राजसदने जाड्यहृज्जलपूरितम्॥
तत्प्रासादपुरोभागे मम शृङ्गारमण्डपः।
श्रीपीठं तद्धि विज्ञेयं निःश्रीकश्रीसमर्पणम्॥
(स्कन्दपुराण, काशीखण्ड, अध्याय - ७९, श्लोक - ६८-७०)

अर्थात् - "जिसके जल को पीने मात्र से निर्मल ज्ञान उदय हो जाता है, उस ज्ञानवापी में मैं उमा (पार्वती) के साथ सदैव जलक्रीड़ा करता हूँ। मेरी जलक्रीड़ा का वह स्थान मुझे बहुत प्रसन्नता देता है। इसी राजमहल में जड़ता का हरण करने वाला जल से भरा वह स्थान है। उसके सामने मेरा शृंगारमण्डप है, जिसे निर्धनों को धन प्रदान करने वाला श्रीपीठ समझना चाहिये।

पद्मपुराण में भी ऐसे ही देवर्षि नारदजी ने एक ब्राह्मण और राक्षसियों का संवाद वर्णित किया है। राक्षसियों ने ब्राह्मण से प्रश्न किया कि उन्होंने कौन कौन से तीर्थों में भ्रमण किया है, तब ब्राह्मण ने उत्तर दिया -

तत्र स्नानादिकं कर्म निशाचर्यः कृतं मया।
ततः काशीमहं प्राप्तो राजधानीमुमापतेः॥
नत्वा विश्वेश्वरं देवं बिन्दुमाधवमेव च।
स्नातं मणिकर्णिकायां ज्ञानवाप्याञ्च भक्तितः॥
त्रिरात्रिमुषितस्तत्र प्रयागं पुनरागमम्।
(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय - २०८, श्लोक - ३६-३७)

अर्थात् - "हे राक्षसियों ! मेरे द्वारा (नानातीर्थों में) स्नान किया गया, फिर मैं उमापति महादेव की राजधानी काशी में आया। वहां भगवान् विश्वेश्वर और बिन्दुमाधव को प्रणाम करके मैंने भक्तिपूर्वक मणिकर्णिका एवं ज्ञानवापी में स्नान किया। फिर वहाँ तीन रात्रि व्यतीत करके मैं पुनः प्रयागराज आ गया।"

इससे सिद्ध होता है कि ज्ञानवापी का अस्तित्व आदिकाल से है, पूर्वकाल में भी लोग ज्ञानवापी का महत्व जानते थे और नियमित शास्त्रोक्त विधि से उसका सेवन भी करते थे। काशी की गौरीयात्रा का वर्णन भी निम्न प्रमाण से देखें -

अतः परं प्रवक्ष्यामि गौरीयात्रामनुत्तमाम्।
शुक्लपक्षे तृतीयायां या यात्रा विश्ववृद्धिदा।॥
गोप्रेक्षतीर्थे सुस्नाय मुखनिर्मालिकां व्रजेत्।
ज्येष्ठावाप्यां नरः स्नात्वा ज्येष्ठागौरीं समर्चयेत्॥
सौभाग्यगौरी सम्पूज्या ज्ञानवाप्यां कृतोदकैः।
ततः शृङ्गारगौरीञ्च तत्रैव च कृतोदकैः॥
स्नात्वा विशालगङ्गायां विशालाक्षीं ततो व्रजेत्।
सुस्नातो ललितातीर्थे ललितामर्चयेत्ततः॥
स्नात्वा भवानीतीर्थेऽथ भवानीं परिपूजयेत्।
मङ्गला च ततोऽभ्यर्च्या बिन्दुतीर्थकृतोदकैः॥
ततो गच्छेन्महालक्ष्मीं स्थिरलक्ष्मीसमृद्धये।
इमां यात्रां नरः कृत्वा क्षेत्रेऽस्मिन्मुक्तिजन्मनि॥
(स्कन्दपुराण, काशीखण्ड, अध्याय - १००, श्लोक - ६७-७२)

अर्थात् - "अब मैं विश्व की वृद्धि करने वाली अत्यन्त उत्तम गौरीयात्रा को कहने जा रहा हूँ। शुक्लपक्ष की तृतीया को मुखनिर्मालिका में जाकर ज्येष्ठावापी में स्नान करके व्यक्ति ज्येष्ठागौरी का पूजन करे। फिर ज्ञानवापी में जाकर उसके जल से सौभाग्यगौरी की पूजा करनी चाहिए। वहीं पर उसी जल से शृंगारगौरी की पूजा भी करे। विशालगङ्गा में स्नान करके विशालाक्षी के पास जाये एवं ललितातीर्थ में विधिवत् स्नान करके ललितादेवी का पूजन करे। अब भवानीतीर्थ में स्नान करके भवानी की पूजा करे। उसके बाद बिन्दुतीर्थ के जल से मङ्गला की पूजा करनी चाहिए। फिर स्थिर लक्ष्मी की वृद्धि के लिए महालक्ष्मी के पास जाये। इस यात्रा को करके व्यक्ति इस क्षेत्र में इसी जन्म में मुक्ति को प्राप्त कर जाता है।

स्कन्दपुराण में वर्णित है -

आकाशात्तारकाल्लिङ्गं ज्योतीरूपमिहागतम्।
ज्ञानवाप्याः पुरोभागे तल्लिङ्गं तारकेश्वरम्॥
तारकं ज्ञानमाप्येत तल्लिङ्गस्य समर्चनात्।
ज्ञानवाप्यां नरः स्नात्वा तारकेशं विलोक्य च॥
कृतसन्ध्यादिनियमः परितर्प्य पितामहान्।
धृतमौनव्रतो धीमान्यावल्लिङ्गविलोकनम्॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यः पुण्यं प्राप्नोति शाश्वतम्।
प्रान्ते च तारकं ज्ञानं यस्माज्ज्ञानाद्विमुच्यते॥
(स्कन्दपुराण, काशीखण्ड, अध्याय - ६९, श्लोक - ५३-५६)

श्लोकों का भाव यह है कि आकाशमण्डल से जो तारकलक्षणक ज्योतिःस्वरूप लिङ्ग आया, वह ज्ञानवापी के सामने वाले भाग में तारकेश्वर नाम से स्थित है। इस लिङ्ग की पूजा करने से व्यक्ति को तारने वाले ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है। ज्ञानवापी में स्नान, तारकेश्वर भगवान् का दर्शन, सन्ध्या आदि नियम, पूर्वजों का तर्पण करके मौनव्रत को धारण करने वाला बुद्धिमान् जब तक लिङ्ग का दर्शन करता है, उतने में सभी पापों से मुक्त होकर शाश्वत पुण्य को प्राप्त करता है। अन्त में उद्धार करने वाले ज्ञान को प्राप्त करके उसी ज्ञान से मुक्त हो जाता है।

स्कन्दपुराण में महर्षि अगस्त्य के प्रश्न करने पर, कि देवता भी जिसकी प्रशंसा करते हैं, वह ज्ञानवापी क्या है, भगवान् स्कन्द उन्हें बताते हैं कि भगवान् ईशान रुद्र के द्वारा जलाभाव की स्थिति से व्यथित होकर अपने त्रिशूल से ज्ञानवापी का निर्माण करके किये गये सहस्रधारार्चन के फलस्वरूप भगवान् (विश्वनाथ) विश्वेश्वर ने उन्हें तपस्या से सन्तुष्ट होकर वरदान मांगने को कहा था। तब ईशानदेव ने कहा कि यह क्षेत्र आपके नाम से अद्वितीय हो। तब भगवान् विश्वेश्वर ने कहा कि तीनों लोकों में यह सर्वोत्तम शिवतीर्थ होगा। यहाँ मैं स्वयं ज्ञानवापी में जल का स्वरूप धारण करके निवास करूँगा जिसके सेवन से सभी पाप, कष्ट, रोग, अज्ञान आदि का नाश हो जायेगा। साथ ही भगवान् शिव ने गया, कुरुक्षेत्र, पुष्कर आदि तीर्थों की अपेक्षा ज्ञानवापी के जल की विशिष्टता भी बतायी। सम्बन्धित प्रमाण निम्न श्लोकों में विस्तार से देखे जा सकते हैं -

अगस्त्य उवाच
स्कन्द ज्ञानोदतीर्थस्य माहात्म्यं वद साम्प्रतम्।
ज्ञानवापीं प्रशंसन्ति यतः स्वर्गौकसोऽप्यलम्॥

स्कन्द उवाच
घटोद्भव महाप्राज्ञ शृणु पापप्रणोदिनीम्।
ज्ञानवाप्याः समुत्पत्तिं कथ्यमानां मयाधुना॥
अनादिसिद्धे संसारे पुरा देवयुगे मुने।
प्राप्तः कुतश्चिदीशानश्चरन्स्वैरमितस्ततः॥
न वर्षन्ति यदाभ्राणि न प्रावर्तन्त निम्नगाः।
जलाभिलाषो न यदा स्नानपानादि कर्मणि॥
क्षारस्वादूदयोरेव यदासीज्जलदर्शनम्।
पृथिव्यां नरसञ्चारे वर्तमाने क्वचित्क्वचित्॥
निर्वाणकमलाक्षेत्रं श्रीमदानन्दकाननम्।
महाश्मशानं सर्वेषां बीजानां परमूषरम्॥
महाशयनसुप्तानां जन्तूनां प्रतिबोधकम्।
संसारसागरावर्तपतज्जन्तुतरण्डकम्॥
यातायातातिसङ्खिन्न जन्तुविश्राममण्डपम्।
अनेकजन्मगुणितकर्मसूत्रच्छिदाक्षुरम्॥
सच्चिदानन्दनिलयं परब्रह्मरसायनम्।
सुखसन्तानजनकं मोक्षसाधनसिद्धिदम्॥
प्रविश्य क्षेत्रमेतत्स ईशानो जटिलस्तदा।
लसत्त्रिशूलविमलरश्मिजालसमाकुलः॥
×××××××××××
अस्येशानस्य तल्लिङ्गं दृष्ट्वेच्छेत्यभवत्तदा।
स्नपयामि महल्लिङ्गं कलशैः शीतलैर्जलैः॥
चखान च त्रिशूलेन दक्षिणाशोपकण्ठतः।
कुण्डं प्रचण्डवेगेन रुद्रो रुद्रवपुर्धरः॥
पृथिव्यावरणाम्भांसि निष्क्रान्तानि तदा मुने।
भूप्रमाणाद्दशगुणैर्यैरियं वसुधावृता॥
तैर्जलैः स्नापयाञ्चक्रे त्वत्स्पृष्टैरन्यदेहिभिः।
तुषारैर्जाड्यविधुरैर्जञ्जपूकौघहारिभिः॥
सन्मनोभिरिवात्यच्छैरनच्छैर्व्योमवर्त्मवत्।
ज्योत्स्नावदुज्ज्वलच्छायैः पावनैः शम्भुनामवत्.
पीयूषवत्स्वादुतरैः सुखस्पर्शैर्गवाङ्गगवत्।
निष्पापधीवद्गम्भीरैस्तरलैः पापिशर्मवत्॥
विजिताब्जमहागन्धैः पाटलामोदमोदिभिः।
अदृष्टपूर्वलोकानां मनोनयनहारिभिः॥
××××××××××××
सहस्रधारैः कलशैः स ईशानो घटोद्भव।
सहस्रकृत्वः स्नपयामास संहृष्टमानसः॥
ततः प्रसन्नो भगवान्विश्वात्मा विश्वलोचनः।
तमुवाच तदेशानं रुद्रं रुद्रवपुर्धरम्॥
तव प्रसन्नोस्मीशान कर्मणानेन सुव्रत।
गुरुणानन्यपूर्वेण ममातिप्रीतिकारिणा॥
ततस्त्वं जटिलेशान वरं ब्रूहि तपोधन।
अदेयं न तवास्त्यद्य महोद्यमपरायण॥

ईशान उवाच

यदि प्रसन्नो देवेश वरयोग्योस्म्यहं यदि।
तदेतदतुलं तीर्थं तव नाम्नास्तु शङ्कर॥

विश्वेश्वर उवाच

त्रिलोक्यां यानि तीर्थानि भूर्भुवःस्वःस्थितान्यपि।
तेभ्योऽखिलेभ्यस्तीर्थेभ्यः शिवतीर्थमिदं परम्॥
शिवज्ञानमिति ब्रूयुः शिवशब्दार्थचिन्तकाः।
तच्च ज्ञानं द्रवीभूतमिह मे महिमोदयात्॥
अतो ज्ञानोद नामैतत्तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
अस्य दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते॥
ज्ञानोदतीर्थसंस्पर्शादश्वमेधफलं लभेत्।
स्पर्शनाचमनाभ्याञ्च राजसूयाश्वमेधयोः॥
फल्गुतीर्थे नरः स्नात्वा सन्तर्प्य च पितामहान्।
यत्फलं समवाप्नोति तदत्र श्राद्धकर्मणा॥
गुरुपुष्यासिताष्टम्यां व्यतीपातो यदा भवेत्।
तदात्र श्राद्धकरणाद्गयाकोटिगुणं भवेत्॥
यत्फलं समवाप्नोति पितॄन्सन्तर्प्य पुष्करे।
तत्फलं कोटिगुणितं ज्ञानतीर्थे तिलोदकैः॥
सन्निहत्यां कुरुक्षेत्रे तमोग्रस्ते विवस्वति।
यत्फलं पिण्डदानेन तज्ज्ञानोदे दिने दिने॥
पिण्डनिर्वपणं येषां ज्ञानतीर्थे सुतैः कृतम्।
मोदन्ते शिवलोके ते यावदाभूतसम्प्लवम्॥
अष्टम्यां च चतुर्दश्यामुपवासी नरोत्तमः।
प्रातः स्नात्वाथ पीताम्भस्त्वन्तर्लिङ्गगमयो भवेत्॥
एकादश्यामुपोष्यात्र प्राश्नाति चुलुकत्रयम्।
हृदये तस्य जायन्ते त्रीणि लिङ्गान्यसंशयम्॥
ईशानतीर्थे यः स्नात्वा विशेषात्सोमवासरे।
सन्तर्प्य देवर्षि पितॄन्दत्त्वा दानं स्वशक्तितः॥
ततः समर्च्य श्रीलिङ्गं महासम्भारविस्तरैः।
अत्रापि दत्त्वा नानार्थान्कृतकृत्योभवेन्नरः॥
उपास्य संध्यां ज्ञानोदे यत्पापं काललोपजम्।
क्षणेन तदपाकृत्य ज्ञानवाञ्जायते द्विजः॥
शिवतीर्थमिदं प्रोक्तं ज्ञानतीर्थमिदं शुभम्।
तारकाख्यमिदं तीर्थं मोक्षतीर्थमिदं ध्रुवम्॥
स्मरणादपि पापौघो ज्ञानोदस्य क्षयेद्ध्रुवम्।
दर्शनात्स्पर्शनात्स्नानात्पानाद्धर्मादिसम्भवः॥
डाकिनीशाकिनीभूतप्रेतवेतालराक्षसाः।
ग्रहाः कूष्माण्डझोटिङ्गाः कालकर्णी शिशुग्रहाः।
ज्वरापस्मारविस्फोटद्वितीयकचतुर्थकाः।
सर्वे प्रशममायान्ति शिवतीर्थजलेक्षणात्॥
ज्ञानोदतीर्थपानीयैर्लिङ्गं यः स्नापयेत्सुधीः।
सर्वतीर्थोदकैस्तेन ध्रुवं संस्नापितं भवेत्॥
ज्ञानरूपोहमेवात्र द्रवमूर्तिं विधाय च।
जाड्यविध्वंसनं कुर्यां कुर्यां ज्ञानोपदेशनम्॥

इति दत्त्वा वराञ्छम्भुस्तत्रैवान्तरधीयत।
कृतकृत्यमिवात्मानं सोप्यमंस्तत्रिशूलभृत्॥
ईशानो जटिलो रुद्रस्तत्प्राश्य परमोदकम्।
अवाप्तवान्परं ज्ञानं येन निर्वृतिमाप्तवान्॥
(स्कन्दपुराण, काशीखण्ड, अध्याय - ३३, श्लोक - ०१-५२ के मध्य से)

भगवान् ईशान रुद्र, महादेव के पांचवें वक्त्रांश हैं। वे पांचवें सिंहासन के अधिपति भी हैं। अतः ज्ञानसिंहासनसीन भगवान् ईशान ने काशी में ज्ञानमण्डप के समीप ज्ञानवापी का निर्माण करके अज्ञान को दूर करने की कृपा की है, ऐसा परम्परा से ज्ञात होता है। इसके अतिरिक्त कलावती का उपाख्यान भी द्रष्टव्य है। पण्डित हरिस्वामी और उनकी पत्नी प्रियंवदा की पुत्री सुशीला का अपहरण करने की चेष्टा एक विद्याधर ने की थी जिसके बाद एक राक्षस से हुए युद्ध में उसका प्राणान्त हो गया। कालान्तर में वह कन्या कर्णाटक की राजकुमारी बनी और बाद में जब काशी आयी तो भगवान् विश्वेश्वर के दक्षिणभाग में स्थित दण्डनायक के द्वारा रक्षित ज्ञानवापी के जल का सेवन करने से उसे अपने पूर्वजन्म का ज्ञान हुआ और फिर तत्त्वज्ञान को प्राप्त करके वह मुक्त हो गयी। भगवान् स्कन्द बताते हैं कि यह कोई कल्पना नहीं, अपितु हमारे देश का प्राचीन इतिहास है। यह प्रसङ्ग बहुत बड़ा है अतः आवश्यक श्लोकों का दर्शन कराया जाता है -

स्कन्द उवाच
कलशोद्भव चित्रार्थमितिहासं पुरातनम्।
ज्ञानवाप्यां हि यद्वृत्तं तदाख्यामि निशामय॥
×××××××××
कलावती चित्रपटीं पश्यन्तीत्थं मुहुर्मुहुः।
ज्ञानवापीं ददर्शाथ श्रीविश्वेश्वरदक्षिणे॥
यदम्बु सततं रक्षेद्दुर्वृत्ताद्दण्डनायकः।
सम्भ्रमो विभ्रमश्चासौ दत्त्वा भ्रान्तिं गरीयसीम्॥
योऽष्टमूर्तिर्महादेवः पुराणे परिपठ्यते।
तस्यैषाम्बुमयी मूर्तिर्ज्ञानदा ज्ञानवापिका॥
नेत्रयोरतिथीकृत्य ज्ञानवापी कलावती।
कदम्बकुसुमाकारां बभार क्षणतस्तनुम्॥
×××××××××××××
कलावत्युवाच
एतस्माज्जन्मनः पूर्वमहं ब्राह्मणकन्यका॥
उपविश्वेश्वरं काश्यां ज्ञानवाप्यां रमे मुदा।
जनको मे हरिस्वामी जनयित्री प्रियंवदा॥
×××××××××××××
कर्णाटनृपतेः कन्या बभूवाहं कलावती।
इति ज्ञानं ममोद्भूतं ज्ञानवापीक्षणात्क्षणात्।
इति तस्या वचः श्रुत्वा सापि बुद्धिशरीरिणी॥
ताश्च तत्परिचारिण्यः प्रहृष्टास्यास्तदाऽभवन्।
प्रोचुस्तां प्रणिपत्याथ पुण्यशीलां कलावतीम्॥
अहो कथं हि सा लभ्या यत्प्रभावोयमीदृशः।
धिग्जन्म तेषां मर्त्येऽस्मिन्यैर्नैक्षि ज्ञानवापिका॥
×××××××××××
तदा प्रभृति लोकेऽत्र ज्ञानवापी विशिष्यते।
सर्वेभ्यस्तीर्थमुख्येभ्यः प्रत्यक्षज्ञानदा मुने॥
सर्वज्ञानमयी चैषा सर्वलिङ्गमयी शुभा।
साक्षाच्छिवमयी मूर्तिर्ज्ञानकृज्ज्ञानवापिका॥
सन्ति तीर्थान्यनेकानि सद्यः शुचिकराण्यपि।
परन्तु ज्ञानवाप्या हि कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥
ज्ञानवाप्याः समुत्पत्तिं यः श्रोष्यति समाहितः।

न तस्य ज्ञानविभ्रंशो मरणे जायते क्वचित्॥
महाख्यानमिदं पुण्यं महापातकनाशनम्।
महादेवस्य गौर्याश्च महाप्रीतिविवर्धनम्॥
पठित्वा पाठयित्वा वा श्रुत्वा वा श्रद्धयान्वितः।
ज्ञानवाप्याः शुभाख्यानं शिवलोके महीयते॥
(स्कन्दपुराण, काशीखण्ड, अध्याय - ३४ एवं ३५ से उद्धृत)

भगवान् नारायण के ज्ञानावतार वेदव्यासजी के काल में भी ज्ञानवापी यथावत् थी। उसके समक्ष भगवान् की प्रसन्नता के लिये वेदव्यास जी ने भजन, कीर्तन, नृत्य आदि भी किया है। वेदव्यासजी ने स्वयं उसका वर्णन स्कन्दपुराण में किया है -

व्यासो विश्वेशभवनं समायातः सुहृष्टवत्।
ज्ञानवापीपुरोभागे महाभागवतैः सह॥
विराजमानसत्कण्ठस्तुलसीवरदामभिः।
स्वयं तालधरो जातः स्वयं जातः सुनर्तकः॥
वेणुवादनतत्त्वज्ञः स्वयं श्रुतिधरोऽभवत्।
नृत्यं परिसमाप्येत्थं व्यासः सत्यवतीसुतः॥
(स्कन्दपुराण, काशीखण्ड, अध्याय - ९५)

ज्ञानवापी शब्द और उसका वर्णन सनातन धर्म के ग्रन्थों में ही मिलता है। यह सामान्य बुद्धि का व्यक्ति भी देख कर समझ सकता है कि मन्दिर का विध्वंस करके ऊपर से मस्ज़िद का आवरण चढ़ा दिया गया है। सनातन धर्म से इतर मतों की किताबों में ज्ञानवापी शब्द या उसका वर्णन है ही नहीं। कितनी हास्यास्पद बात है कि लोग दावा करते हैं कि मूर्तिभञ्जक विचारधारा के आक्रान्ताओं ने पहले सनातनी वास्तुशैली में निर्माण प्रारम्भ किया और उसके बाद गुम्बद लगा कर उसका नाम संस्कृत में ज्ञानवापी रख दिया, जिस शब्द का कोई सम्बन्ध उनके मज़हब से है ही नहीं। ज्ञानं महेश्वरादिच्छेत् ... ज्ञानसिंहासन की नगरी काशी में भगवान् विश्वनाथ के ज्ञानमण्डप के पास विश्व को ज्ञान को प्रदान करने के लिये ज्ञानवापी की उपयोगिता शास्त्रज्ञों व इतिहासकारों से छिपी हुई नहीं है। फिर भी कोई भय, लोभ, हठ या अज्ञान से सत्य को स्वीकार नहीं करना चाहता है तो इसमें सत्य का कोई दोष नहीं है - नोलूकः सूर्यमीक्षते॥

हंसवंशावतंस श्रीमन्महामहिम विद्यामार्तण्ड निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु
His Holiness Shri Bhagavatananda Guru

प्रश्नकर्ता - वैद्यनाथ ज्योतिर्लिंग कहाँ है ? महाराष्ट्र के परली में अथवा झारखण्ड के देवघर में ?

निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु - शास्त्रों में "परल्यां वैद्यनाथञ्च" एवं "वैद्यनाथञ्चिताभूमौ" ये दोनों ही सन्दर्भ मिलते हैं। लंकेश्वर रावण के द्वारा स्थापित रावणेश्वर शिवलिंग की बात करें तो वह देवघर में ही है क्योंकि यदि आधुनिक काल के मानचित्र के अनुसार भी देखें तो कैलास और लंका के मध्य सीधे यात्रा करने पर झारखण्ड ही मध्य में पड़ेगा, महाराष्ट्र नहीं।

श्रीवैद्यनाथ ज्योतिर्लिंग, जो झारखण्ड के देवघर में स्थित हैं, उनका नाम ही वैद्यनाथ है, व्यक्तिवाचक संज्ञा है। जबकि जो महाराष्ट्र के परली में हैं, वे वैद्यों के नाथ, ऐसी गुणवाचक संज्ञा से युक्त हैं। ज्योतिर्लिंग के रूप में दोनों का ही वर्णन यद्यपि समुपलब्ध है किन्तु फिर भी शास्त्रीय प्रमाण देवघर के विषय में अधिक मिलते हैं क्योंकि चिताभूमि देवघर को ही कहा गया है, परली को नहीं।

पुनश्च द्वादशज्योतिर्लिंगसंस्तवन में भी वैद्यनाथ के ध्यान में कहते हैं - पूर्वोत्तरे प्रज्वलिकानिधाने ... भारत के मध्य भाग से देखें तो देवघर की स्थिति ही पूर्वोत्तर में पड़ेगी, परली की नहीं। साथ ही शवों का प्रज्वलन भी वहीं प्रसिद्ध है, परली में नहीं। कुछ आगमवाक्य भी ध्यातव्य हैं। शक्तिसङ्गमतन्त्र में देशादिविनिर्णय के अन्तर्गत अंगदेश का परिसीमन बताते हुए भगवान् उपदिष्ट करते हैं -

वैद्यनाथं समारभ्य भुवनेशान्तगं शिवे।

तावदङ्गाभिधो देशो यात्रायां न हि दुष्यति॥

सर्वविदित है कि अंगदेश प्राचीन बिहार का भाग है जिसकी सीमा में वैद्यनाथ स्थित हैं और देवघर भी पहले बिहार में ही था। वर्तमान में यह तीर्थ झारखण्ड राज्य में आ गया है। झारखण्ड नाम बहुत प्राचीन है और वास्तव में वैद्यनाथ भगवान् झारखण्ड में ही हैं, ऐसा स्पष्ट आगमवाक्य भी महालिङ्गेश्वरतन्त्र में समुपलब्ध है - झारखण्डे वैद्यनाथो वक्रेश्वरस्तथैव च। अतः शास्त्रप्रामाण्य के बल पर झारखण्ड के देवघर स्थित वैद्यनाथ ज्योतिर्लिंग को विशिष्ट प्राधान्यता प्राप्त है।

श्री गोपेश भारद्वाज जी - प्यारो ! एक प्रश्न का उत्तर दीजिये । मुझसे एक स्मार्त ने पूछा था । प्रश्न बहुत ही चकाचक है , सटीक है । विशेष रूप से कोई वैष्णव उत्तर देने का प्रयास करें ... श्रीमद्भगवद्गीता में स्वयं प्यारे प्रभु ने कहा - सर्वधर्मान्परित्यज्य •.... किन्तु तदुपरान्त भी अर्जुन ने युद्ध तो किया ही , पश्चात् भी एक बार अभिमान हो ही गया था । तो प्रश्न यह है कि यदि उक्त श्लोक का अर्थ वही है जो प्रायः सभी वैष्णव किया करते हैं तब तो अर्जुन ने भगवान् की बात मानी ही नहीं😂 फिर क्या लाभ ऐसा उपदेश देने से ? या तो अर्जुन नहीं समझे , या भगवान् नहीं समझा पाये या फिर आजकल के तथाकथित वैष्णव ही अर्थ का अनर्थ कर रहे हैं😂😂😂 बताइये सत्य क्या है😅🙏

निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु - भगवान् ने कहा कि मामैकं शरणं व्रज किन्तु उससे पहले यह भी कहा - मामनुस्मर युद्ध्य च। यदि युद्ध से रोकना होता तो पहले अध्याय में अर्जुन वही कर रहे थे।

श्री गोपेश भारद्वाज जी - जी भैया🙏किन्तु प्रश्न फिर भी वही है - महाभारत के युद्धोपरान्त भी सम्पूर्ण शरणागति नहीं ली अर्जुन ने । यदि सर्वतोभावेन प्रणिपात होता तो अभिमान और अन्यान्य सांसारिक कर्तव्य कैसे होते? स्वधर्मनिष्ठता अथवा सर्वधर्मान्परित्यज्य .... कोई एक ही सम्भव हो सकेगा न🙏

निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु - जो सम्पूर्ण शरणागत नहीं होता, उसका रथ भगवान् हांकते हैं ? वंचितोऽहं महाराज हरिणा बन्धुरूपिणा कहता है वह ? जो शरणागत नहीं होता, उसे भगवान् अपने रथ पर बैठाकर सशरीर महावैकुण्ठ ले जाकर भूमापुरुष का दर्शन कराते हैं ? और तो और भूमापुरुष स्वयं कहते हैं कि तुमसे मिलने के लिए ही मैं ब्राह्मण के बच्चे यहाँ बुला लेता था ? सर्वधर्मान्परित्यज्य में धर्म का भाव सकाम लोकधर्म से है। धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान्।

श्री गोपेश भारद्वाज जी - जी। अर्थात् सम्पूर्ण शरणागत होकर भी अर्जुन केवल व्यवहारिक मर्यादायें निभा रहे थे आत्मज्ञानी राजा विदेह की भाँति ? पद्मपत्रमिवाम्भसा .. वाला ?🙏

निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु - बिल्कुल। जो भगवान् के साथ खा रहा हो, खेल रहा हो, घूम रहा हो, सदेह दिव्य वैकुण्ठ आ जा रहा हो, उसकी शरणागति की समीक्षा आजकल के मनुष्य करें तो हमें उन्हें जूता मारने मन करता है। भगवान् की छोड़िए, हम तो समझते हैं कि अर्जुन का भी ढंग से पूजन कर ले तो कल्याण हो जाएगा। पाण्डवानां धनञ्जयः। और अर्जुन कितने बड़े भक्त हैं, ये जानने के लिए श्रीमद्भगवद्गीता के ग्यारहवें अध्याय में देखें - भक्त्या त्वनन्यया शक्यमहमेवंविधोऽर्जुन। अर्जुन को विश्वरूप दिखा कर उन्होंने अपना अनन्य भक्त सिद्ध किया है। अब अनन्य भक्त भी शरणागत नहीं है तो फिर कौन होता है ?

श्री गोपेश भारद्वाज जी - जय हो🥰🙏🙏🙏

निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु - कौन बन्धु हल्ला काट रहे हैं ?

श्री गोपेश भारद्वाज जी - पूर्व में प्रज्ञान शर्मा जी ने यह प्रश्न किया था - वैष्णव लोग ऐसा उत्तर नहीं दे पाये तो मैंने सोचा सम्भवतः मेरी सूची से कोई वैष्णव सज्जन उत्तर दे सकेंगे😅🙏

निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु - हम तो वैष्णवद्रोही हैं प्रभु🤣🤣 वैष्णवों को नहीं जानते हैं, बस विष्णु को जानते हैं।

श्री गोपेश भारद्वाज जी - आप वैष्णवविरोधी हैं - ऐसा सोचने वाले महादुष्ट हैं😊❤️🙏

निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु - देखिए, भगवान् कहते हैं - अहं भक्तपराधीनः और भगवान् ने अर्जुन का रथ चलाया - प्रेम के बस अर्जुन रथ हांक्यो। तो अर्जुन कम से कम भक्त तो सिद्ध हुए। अब किस स्तर के भक्त हैं, तो भक्त्या त्वनन्यया वाली उक्ति से भगवान् ने उन्हें अनन्य भक्त घोषित किया है। और अनन्य तो दो प्रकार के हैं । एक जो भगवान् को स्वयं से अभिन्न मानें, वो अनन्य - वासुदेवः सर्वमिति और दूसरे, जिन्हें भगवान् स्वयं से अभिन्न मानें, वो अनन्य - ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्। तो पाण्डवानां धनञ्जयः कहकर तथा सदेह भूमापुरुष के लोक ले जाकर भगवान् ने अर्जुन से अपनी अनन्यता भी सिद्ध कर दी। इतने के बाद कोई हल्ला काटे तो दूर से ही राम राम।

श्री गोपेश भारद्वाज जी - वैसे बात यही है कि वैष्णव ही अर्थ का अनर्थ कर रहे हैं भैया । विशेषतः इस्कॉन वाले कि भगवान् ने यह कह दिया मतलब सबको छोड़ो और कोई से धर्म न निभाओ आदि आदि 😂🤣 और सबसे बड़ी बात ये है कि ऐसा स्वयं नहीं करते।